राजा राममोहन राय
भारत में आधुनिक शिक्षा के अग्रदूत

रश्मि श्रीवास्तव*

हमें इस बात को खुले मन से स्वीकार करना होगा कि सामाजिक नीति-नियम तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप गठित होते हैं। आगे चलकर परिवर्तित सामाजिक संरचना में, इनमें हेर-फेर करने, उन में संशोधन करने में हिचक कैसी? किसी भी सामाजिक व्यवस्था में परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन जरूर किये जाने चाहिए। राजा राममोहन राय देश की शिक्षा व्यवस्था में इसी उदारता का समावेश चाहते थे। ज्ञान-विज्ञान के विस्तार व पुनर्जागरण से जिन सकारात्मक पक्षों का उद्‌भव हुआ है वह उनका समावेश भारत की शिक्षा व्यवस्था में करना उचित मानते थे। प्रस्तुत लेख उनके इसी उदारवादी दृष्टिकोण को रेखांकित करता है, जिसकी वर्तमान संदर्भ में अपनी विशेष महत्ता है।

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में आधुनिकीकरण की जो प्रक्रिया आकार ले रही थी उसे सही दिशा देने में राजा राममोहन राय के प्रयासों को हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। राजा राममोहन राय महान समाजसुधारक थे और उन्होंने अपने कार्यों का केंद्र शिक्षा को बनाया था, यही कारण है कि भारत में आधुनिक शिक्षा के इतिहास में उनका नाम सम्मान के साथ दर्ज है। राजा राममोहन राय का जन्म 1772 में बँगाल में हुगली जिले के राधानगर ग्राम में हुआ था। उनके प्रपितामह कृष्णचन्द्र बनर्जी को बँगाल के नवाब से मिली 'राय' की उपाधि के कारण पूरा परिवार राय के नाम से जाना जाता था। राजा राममोहन राय की माता का नाम तारिणी देवी तथा पिता का नाम रमाकान्त राय था। वह बचपन से ही बड़ी कुशाग्र बुद्धि के थे। उन्होंने बँगला, फारसी, अरबी, हिंदी, संस्कृत, अँग्रेज़ी, ग्रीक, फ्रेंच तथा लैटिन भाषाओं पर अपना

**विभागाध्यक्ष* (बी.एड.) हीरालाल यादव बालिका डिग्री कालेज, सरोजनी नगर, लखनऊ (उ. प्र.).

अधिकार प्राप्त किया था। भाषा ज्ञान की समृद्धता के कारण वह विश्व के श्रेष्ठ साहित्य से परिचित हो चुके थे। युवा राय दूरदर्शी एवं कुशल राजनेता तथा कूटनीतिज्ञ थे। लगभग 10 वर्ष तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी में दीवान के पद पर नौकरी करने के पश्चात् 1814 में यह नौकरी छोड़कर वह समाज सुधार तथा सत्य की खोज में कलकत्ता में रहने लगे। यहाँ उन्होंने आत्मीय सभा की स्थापना की। 1815 में उन्होंने ब्रह्मसूत्र का बँगला में अनुवाद किया। अपने ढेरों सामाजिक–राजनीतिक क्रियाकलापों के बीच उनका अन्तर्मन इस अवधि में भारतीय नारियों की स्थिति के प्रति बड़ा ही संवेदनशील हो उठा था। 1818 में उन्होंने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए विख्यात अंदोलन प्रारम्भ किया। इस बीच वे अपने लेखनकार्य द्वारा सामाजिक उत्थान का प्रयास भी करते रहे। 1815 से 1820 के बीच उन्होंने केनोपनिषद् एवं ईशोपनिषद् का बँगला और अँग्रेज़ी में अनुवाद किया साथ ही ईसाई धर्म की अनेक पुस्तकों पर वे अपनी व्याख्याएँ देते रहे। उन्होंने बँगला भाषा में संवाद कौमुदी की भी रचना की। उनके द्वारा शुरु किये गए सती प्रथा आन्दोलन ने भी सकारात्मक दिशा प्राप्त की और 1829 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियन बैंटिक ने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। हिंदू नारियों को इस प्रथा से मुक्ति दिलाने के कारण वह भारत में अमर हो गए। सन् 1827 में उन्होनें ब्रिटिश इण्डिया यूनिटेरियन एसोसियेशन तथा 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। औपचारिक रूप में ब्रह्म समाज का उद्घाटन 23 जनवरी 1830 को हुआ। ब्रह्म समाज के माध्यम से उन्होंने उदारवाद, एकेश्वरवाद तथा आधुनिकतापूर्ण विचारों का प्रचार प्रसार देश के कोने–कोने में किया। उनके विचारों ने भारत में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। ब्रह्म समाज एक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था किन्तु इस आन्दोलन द्वारा प्रसारित बुद्धिवादी, सार्वभौमवादी तथा मानवतावादी विचारों नें राष्ट्रीय आन्दोलन की बौद्धिक नींव तैयार कर दी थी। ब्रह्म समाज का मानना था कि निराकार सर्वव्यापी व सनातन ईश्वर की पूजा व स्तुति की जाए। पूजा व स्तुति में सभी प्रकार के व्यक्ति बिना भेदभाव के एकत्रित हों। ईश्वर की पूजा, धर्म, नैतिकता, दया, परोपकार व अन्य सद्गुणों की वृद्धि एवं सभी धर्मावलम्बियों में भाईचारा बढ़ाने के लिए की जानी चाहिए। यहाँ उन्होंने मूर्ति पूजा से खुद को अलग रखा।

वास्तव में ब्रह्म समाज एक ऐसा आन्दोलन था जो पतन की ओर ले जाने वाली तथा बर्बर बनाने वाली रूढ़ियों के विरुद्ध था। यह वैयक्तिक बुद्धि, हृदय व अन्तःकरण के उदय का द्योतक था। इस आन्दोलन की तुलना यूरोप के बुद्धिवादी जागरण और स्वतंत्र चिंतन के आन्दोलन से की जा सकती है।

भारतीय सामाजिक, राजनीतिक परिवेश में जनजागृति की ज्योति प्रज्जवलित करने वाली इस महान आत्मा ने 20 सितम्बर 1833 को ब्रिस्टल में आखिरी साँसे लीं। अपने जीवनकाल में उन्होनें जिन बहुमूल्य कृतियों की रचना की वह निम्नवत् हैं—

1. 'वेदान्त सूत्र' का बँगला भाषा में अनुवाद।
2. 'वेदान्त' का अँग्रेजी अनुवाद।

3. दि ज्यूडिशियल एण्ड रेवेंयू सिस्टम ऑफ इंडिया।
4. रिमार्क्स ऑन सैटलमेंट इन इण्डिया बाई यूरोपियन्स।
5. अंग्रेजी शिक्षा पर लार्ड एम्हर्स्ट के नाम पत्र
6. यूरोपवासियों को भारत में बसाने संबंधी विचार, आदि।

राजा राममोहन राय वास्तव में एक संवेदनशील प्राणी थे। समाज के किसी भी वर्ग के साथ होने वाले अन्याय से उनका मन द्रवित था। उन्होंने देखा कि जातिगत भेदभाव, तथा स्त्री-पुरुष के बीच होने वाले भेदभाव की जड़े भारत की परम्परावादी नीति नियमों के दूषित स्वरूप का परिणाम है। उनका मानना था कि हमें परम्परावादिता के नाम पर होने वाले किसी भी अन्याय को स्वीकार नहीं करना चाहिए। उनकी यही मुखरता, मानवमात्र के प्रति प्रेमभाव वह आधार था जिसने भारत की जनता को जागृत करने में बड़ा योगदान दिया था।

राजा राममोहन राय की दार्शनिक विचारधारा

राजा राममोहन राय एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने उपनिषदों के आध्यात्मिक एकत्ववाद के तात्विक सिद्धांत को स्वीकार किया था। वह एकेश्वरवादी थे उन्होंने नास्तिकता को प्रोत्साहन न देकर विश्वास के स्थान पर विवेकपूर्ण सृजन का समर्थन किया था। "व्यक्ति की गरिमा में उन्हें असीम विश्वास था। अत: उनकी मान्यता थी कि धर्म और विश्वास को व्यक्ति पर हावी नहीं होने देना चाहिये। चिंतन में विवेक की प्रधानता उन्हें प्रिय थी। उन्होंने स्वयं को एक ऐसे विश्वधर्म के प्रतिपादक के रूप में प्रस्तुत किया जो सम्प्रदाय और परम्परा के समस्त अस्वस्थ बन्धनों को अस्वीकार करता है।"[1] विभिन्न धर्मों का गम्भीर अध्ययन करने एवं वैज्ञानिक दृष्टि विकसित हो जाने के कारण वे विश्ववादी हो गए थे। उन्होंने कहा भी था—

> *"केवल धर्म से ही नहीं, प्रत्युत, अदूषित सामान्य बुद्धि एवं विज्ञान से भी यही ज्ञात होता है कि सारी मनुष्य जाति एक परिवार है तथा जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र है, वे उसी एक परिवार की शाखाएँ हैं"।*[2]

राममोहन राय ने हिंदुत्व, इस्लाम और ईसाईयत तीनों धर्मों का गहन अध्ययन किया था। वह इन तीनों धर्मों पर समान अधिकार के साथ बोल सकते थे। इस्लाम की शिक्षा तथा ईसाइयों के प्रचार ने उनके मन में मूर्ति पूजा के प्रति शंका उत्पन्न कर दी थी किन्तु वेदान्त में उनकी आस्था बनी रही। उन्होंने एकेश्वरवाद की प्रशंसा की थी और विश्वधर्म को आवश्यक माना था। उनके चिंतन में प्राकृतिक धर्म के तत्व भी देखने को मिलते हैं। उन्हें आत्मा का अमरत्व में विश्वास था। उन्होंने नास्तिकता को प्रोत्साहन न देकर विश्वास के स्थान पर विवेकी सृजन का समर्थन किया था। वह आध्यात्मिक एवं धार्मिक जटिलताओं के साथ-साथ, सरल और बोधगम्य सिद्धांतों के पक्षधर थे। उन्होंने सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए एक ओर सच्चा वेदान्ती बनकर ईसाई मिशनरियों का प्रभाव रोका

[1] फाडिया, बी. एल. (2002)- *भारतीय राजनीतिक चिंतन,* साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 85.
[2] दिनकर, रामधारी सिंह (2005) *संस्कृति के चार अध्याय,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 460.

तो दूसरी ओर विभिन्न धर्मों में प्रचलित रूढ़ियों, आडम्बरों एवं विधि-विधानों का परित्याग करने पर जोर दिया। डॉ. वर्मा स्वीकार करते हैं कि अपनी अधिक परिपक्व अवस्था में राय ने एक ऐसी आध्यात्मिक संस्कृति का प्रतिपादन किया जिसका शंकर के वेदान्त से बहुत कुछ साम्य है।[3] राममोहन राय का मानव प्रेम उनकी इस प्रार्थना में निहित है कि 'हे ईश्वर! तू धर्म को ऐसा बना दे कि यह मनुष्य और मनुष्य के बीच में पारम्परिक भेद-भाव और बैर-विरोध को मिटाने तथा मानव-जाति में शान्ति एवं एकता उत्पन्न करने में समर्थ हो। विश्व में एक सर्वशक्तिमान सत्ता है जो उदार और मंगलकारी है। ईश्वरत्व की एकता उनके दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत था।[4]

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि यूरोप के सानिध्य में भारत में जिस नयी मानवता का जन्म हो रहा था वह हिंदू धर्म के आधार पर आकार ले रही थी। राममोहन राय इसे व्यापक तथा स्थाई बना देना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने ब्रह्म समाज का आश्रय ले कर मूर्ति पूजा का बहिष्कार किया, अवतारों को नहीं माना और लोगों का ध्यान उस निराकार निर्विकार, एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया जिसका निरूपण वेदान्त में हुआ है। यह एक ऐसी विचारधारा थी जो सभी धर्मों के प्रति उदार तथा सहानुभूतिशील थी।

राजा राममोहन राय के शिक्षा संबंधी विचार

राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को भारत में व्यवस्थापित किये जाने पर बल दिया। उनके शिक्षा संबंधी विचारों का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है।

शिक्षा का अर्थ

राजा राममोहन राय का मानना था कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को अज्ञानता, अंधविश्वास, असमानता, अन्याय, संकीर्णता, धार्मिक कूपमण्डूकता से उबारा जा सकता है। वह तत्कालीन परिस्थितियों में भारत की आर्थिक सीमाओं से भी परिचित थे और मानते थे कि इतनी बड़ी जनसँख्या के लिए तुरन्त शिक्षा की व्यवस्था सम्भव नहीं है अत: शिक्षा के छनाई सिद्धांत का समर्थन कर 'जो मिले उसका लाभ अवश्य लें' की नीति का समर्थन किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा था शिक्षा आत्मोन्नति का साधन है। इसके द्वारा व्यक्ति के धार्मिक एवं नैतिक जीवन का स्तर ऊँचा उठता है। वह सामाजिक अन्याय एवं कुरीतियों को दूर भगाने का साधन है। यही कारण है कि उन्होंने सीमित संसाधनों द्वारा भारत के एक वर्ग को शिक्षित करने का समर्थन किया। वह जानते थे कि इस शिक्षित वर्ग के प्रभाव में अन्य दूसरे वर्ग की सोच भी सकारात्मक पक्ष की ओर मुड़ सकेगी। उन्होंने शिक्षा को आत्मोन्नति का साधन माना था और कहा था—

> *"यदि हम भारतीयों को तत्कालीन आराजकता की स्थिति में उनके नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्यों को बचाना चाहते हैं तो शिक्षा द्वारा उन्हें आत्मोन्नति का अवसर प्रदान करना होगा"।*

[3] वर्मा, वी. पी., (2002), *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन*, लक्ष्मी नारायण, अग्रवाल, आगरा, पृ. 16-20.

[4] शर्मा, बी. एन. शर्मा, रामकृष्ण दत्त, शर्मा सविता, (2005), *भारतीय राजनीतिक विचारक*, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 172.

उन्होंने शिक्षा का आशय साक्षरता मात्र से नहीं लगाया बल्कि उनके अनुसार शिक्षा सामाजिक क्रांति एवं मानवतावादी विचारों का विकास करने वाली प्रक्रिया है।

शिक्षा के उद्देश्य

राजा राममोहन राय ने अपने जीवन में जिन संस्थाओं के गठन में सहयोग दिया उनकी कार्य पद्धति तथा इनके लक्ष्य को देखकर हमें उनके शिक्षा के उद्देश्य संबंधी विचारों की जानकारी प्राप्त होती है।

उन्होंने शिक्षा का प्रधान उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन तथा आत्मोन्नति माना था अत: वह चाहते थे कि देश की शिक्षण संस्थाएँ विद्यार्थियों को सिर्फ सैद्धांतिक नीति नियमों की जानकारी न दे वह उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार करें और उनके अन्दर आधुनिक मानवतावादी तथा उदारवादी सोच विकसित करें। उन्होंने शिक्षा द्वारा बालक के मानसिक विकास पर भी जोर दिया। अच्छी आदतों, आदर्श दृष्टिकोण और नैतिक मूल्य बालक के व्यक्तित्व को निखार देते हैं। अत: शिक्षा द्वारा इन गुणों का विकास भी बालक में किया जाए स्वयं में तमाम खूबियाँ विकसित कर यदि एक बालक अपने सामाजिक वातावरण में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता तो भी स्थितियाँ जटिल होंगी। अत: आवश्यक है कि शिक्षा एक बालक में अपने आस-पास के वातावरण के साथ सामन्जस्य स्थापित करने की कला भी विकसित की जाए। वह चाहते थे कि इन आदर्श स्थितियों को प्राप्त करते हुए शिक्षा अवश्य ही एक व्यक्ति के जीवकोपार्जन का साधन बनें। राय शिक्षा के द्वारा बालक में राष्ट्रीयता तथा अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास भी चाहते थे। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने का स्वप्न देखा था और वे शिक्षा के माध्यम से बालकों में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास किया जाना आवश्यक मानते थे।

हम देखते हैं कि हमारी विविध समस्याओं की जड़ हमारी खुद की सोच है। परिवर्तित परिस्थितियों के बीच उदारता के साथ यदि आवश्यक परिवर्तनों को समय रहते स्वीकार किया जाए तो वे समस्याएँ छोटे स्तर पर ही समाप्त की जा सकती हैं। राजा राममोहन राय ने इसी बिन्दु को प्रधानता देते हुए शिक्षा द्वारा एक बालक में उचित दृष्टिकोण का विकास कर उसे वैचारिक संकीर्णता से मुक्त करना माना था। उनके यह विचार विकास की किसी भी अवस्था में बड़े प्रभावी हैं।

पाठ्यक्रम

भारत के इतिहास पर नजर डालने पर हम देखते हैं कि मुगल साम्राज्य के मध्य शिक्षा के क्षेत्र में हुई अनदेखी का खामियाजा पूरे देश को भुगतना पड़ा था। पुनर्जागरण के प्रभाव से यूरोप जहाँ अपनी चमक पूरे विश्व में बिखेर रहा था, भारत अपनी विशिष्टता को दुनियाँ के सामने प्रदर्शित कर सकने में असमर्थ था। राय ने भारत को समृद्ध, सुसंस्कृत और सम्पूर्ण विश्व के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की ताकत हेतु आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा अँग्रेज़ी शिक्षा की महत्ता को स्वीकार किया था। उन्होंने इस प्रकार के पाठ्यक्रम को महत्त्व दिया था जिससे बालक का दृष्टिकोण व्यापक एवं विशाल

बन सके। विद्यालयी पाठ्यक्रम के संदर्भ में उनकी अवधारणा निम्नवत् है—

- प्राच्य भाषाएँ।
- नैतिक शिक्षा।
- ब्रह्म संगीत का प्रारम्भ।
- विज्ञान (क्षेत्रीय भाषाओं का भी आश्रय लिया जाए)।
- प्रमुख विषय —व्याकरण, भूगोल, गणित, रेखा गणित, संस्कृत, दर्शन, रसायनशास्त्र, शरीर विज्ञान धार्मिक शिक्षा।
- प्रार्थना सभाएँ।
- पाठ्य सहगामी क्रियाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राममोहन राय ने शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक तथा परम्परागत शिक्षण व्यवस्था के संयोजन की एक व्यवस्थित रूपरेखा हमारे सामने रखी। उन्होंने विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान द्वारा बालक के मस्तिष्क को प्रबुद्ध और उदारवादी बनाने के साथ नैतिक शिक्षा, ब्रह्म संगीत, तथा प्रार्थना सभा आदि के माध्यम से बालक को अनुशासित जीवन के लिए तैयार करने को प्रमुखता दी। वह इस बात के लिए भी सचेत दिखे कि अँग्रेज़ी भाषा के ज्ञान से ओतप्रोत बालक एक भारतीय भी बना रहे। हाँ उसमें इतनी सामर्थ अवश्य हो कि वह सामाजिक कुरीतियों को ज्यों का त्यों स्वीकार करने को तत्पर न हो।

शिक्षण पद्धति

शिक्षण पद्धति के संदर्भ में राजा राममोहन राय के विचारों का विस्तृत लेखा-जोखा हमें नहीं प्राप्त होता है। ब्रह्म समाज में उन्होंने जिन पद्धतियों का प्रयोग किया उनसे हम उनके शिक्षण पद्धति संबंधी विचारों को जान सकते हैं। उन्होंने 'ब्रह्म समाज' एकेश्वरवादी समिति एवं स्वयं स्थापित शिक्षा संस्थाओं में व्याख्यान-विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया था। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि भारत की विभिन्न सामाजिक कुरीतियों को लेकर भारतीयों के मन में एक संशय है। एक पक्ष उनके सकारात्मक पहलू को उद्घाटित करता है और द्वितीय उसके नकारात्मक पक्ष को। उनका मानना था कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था के प्रति यह संशय होगा ही। अत: हम वाद-विवाद के द्वारा विचारों का आदान-प्रदान कर दोनों पक्षों पर विचार कर उपयोगी नीति नियम का पालन करें। शिक्षण हेतु भी विविध सामाजिक विषयों में इस पद्धति का प्रयोग सफल हो सकता है।

1830 में जब ब्रह्म समाज का कार्यालय कलकत्ता के जोरासांको नामक स्थान पर स्थित नये भवन में लाया गया तो उसकी गतिविधियाँ अधिक व्यवस्थित रूप में हमारे आगे आयी। ब्रह्म समाज के अनेक कार्यक्रमों में उपदेश विधि का प्रयोग किया जाता था। वह इस विधि को विद्यालयों में भी प्रयुक्त करने के समर्थक थे। ब्रह्म समाज की सभाओं में गीत-संगीत को भी प्रमुखता दी गयी थी। स्वयं राजा राममोहन राय ने गीत-संगीत के इन कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अनेक गीतों की रचना की थी। उनके बाद उनके कई गीतों को रवींद्रनाथ ठाकुर एवं सुकुमार राय आदि ने पूरा किया। आज भी परम पिता परमेश्वर की स्तुति के रूप में वे गीत प्रचलित हैं। अपने दैनिक जीवन में भी हम देखते हैं कि धार्मिक स्तुतियाँ व संगीत बड़े शान्त भाव से हमारे अंतर में उतरकर नि:स्वार्थ, निश्छल भावनाओं को उत्प्रेरित कर, सुप्त आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करती

हैं। राममोहन राय संगीत तथा प्रार्थना सभाओं का आश्रय लेकर इन्हीं भावों का सम्प्रेषण विद्यार्थी वर्ग तक कराना चाहते थे। उन्होंने ब्रह्म समाज की संस्थाओं में सत्य एवं ईश्वर का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान विधि का भी प्रयोग किया था। सामाजिक व्यवस्थाओं की जड़ता को समाप्त किये जाने हेतु उन्होंने नवीन नीति-नियमों के संयोजन के प्रयोग किये जाने को स्वीकार किया था। जिससे हमें उनके विचारों में प्रयोग विधि की महत्ता को स्वीकृत किये जाने के संकेत मिलते हैं।

शिक्षक तथा शिक्षार्थी

शिक्षक तथा शिक्षार्थी संबंधी राय के विचारों में भी आधुनिक तथा पारम्परिक प्रतिमानों की स्वीकृति देखने को मिलती है। यूँ तो शिक्षक के संबंध में उन्होंने कोई प्रथक विवेचनाएँ नहीं प्रस्तुत की किंतु ब्रह्म समाज व स्वयं के द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं में प्राय: उच्च नैतिक आदर्शों से युक्त, चरित्रवान, आध्यात्मिक तथा वैवाहिक व उदारवादी सोच के व्यक्तियों को प्रमुखता देते थे। वह खुद भी एक शिक्षक का कार्य ही हम सबके बीच कर रहे थे और आदर्श शिक्षक के इन गुणों से युक्त थे। वह शिक्षक को प्रगतिशील समाज के निर्माण का आधार मानते थे और विद्यार्थियों को इस कार्य में बड़ा ऊँचा स्थान देते थे। उनका मानना था कि परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर भारत को आज़ाद कराने का काम भारत का युवा विद्यार्थी वर्ग करेगा। हम देखते हैं कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में युवा छात्र संघ का बहुत बड़ा योगदान था।

यह ठीक है कि उन्होंने बाल केंद्रित शिक्षा की दुहाई नहीं दी किन्तु अपनी योजनाओं में उन्होंने उन्हें विशेष दर्जा अवश्य दिया। वह विद्यार्थियों को प्राचीन परम्परावादी आदर्शों एवं मूल्यों तक ही सीमित न रखकर उनमें स्वतंत्र चिंतनशीलता, वैज्ञानिकता व उदारता से ओतप्रोत करना चाहते थे।

विद्यालय

विद्यालय के संदर्भ में राममोहन राय के विचार-प्रयोजनवादी विचारों से प्रभावित हैं। उन्होंने विद्यालयों को एक ऐसी संस्था माना था जो कि सामाजिक जीवन की प्रयोगशाला, आधुनिक एवं प्राचीन ज्ञान का केंद्र तथा सामाजिक क्रांति के स्तम्भ हों। उनका विचार था कि विद्यालयों का वातावरण तथा शिक्षण-व्यवस्था इस प्रकार की हो जिससे बालकों को व्यवसायिक शिक्षा के साथ-साथ नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा भी प्राप्त हो और उनमें सामाजिक अन्याय से जूझने की उपयुक्त भावना का विकास हो सके।

भारत में शिक्षा का स्वरूप

आज हम सभी खुले मन से विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान की महत्ता की वकालत करते हैं। राममोहन राय ने यह उदारता वर्षों पूर्व दिखाई। शिक्षा और विज्ञान में उनकी गहरी रुचि थी। वे आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के समर्थक थे। अँग्रेज़ी भाषा और पश्चिमी शिक्षा को उन्होंने भारत के लिए लाभकारी बताया था। 1816-17 में उन्होंने कलकत्ता में एक अँग्रेज़ी स्कूल की स्थापना की और उनकी प्रेरणा से ही 1822-23 में हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई। प्रारम्भ में उसका नाम महापाठशाला अथवा एँग्लो-इण्डियन कॉलेज था। वह संस्कृत भाषा की साहित्यिक बारीकियों और

सत्यान्वेषण की पद्धतियों को भलीभाँति समझते थे, फिर भी उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि भारत में पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान का समावेश हो। अँग्रेज़ी भाषा और पश्चिमी शिक्षा को भारत के लिए उपयोगी मानने के साथ-साथ भारतीय दर्शन और धर्म में निहित ज्ञान के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। वेदों तथा उपनिषदों का उनके द्वारा बँगला में किया गया अनुवाद वेदों के प्रति उनकी श्रद्धा का प्रतीक था। उनका मानना था कि अब भारतवर्ष के लिए पाश्चात्य शिक्षा और वैज्ञानिक ज्ञान से दूरी बनाए रखना उचित नहीं है। उन्होंने ईसाई मिशनरियों को शिक्षा के प्रसार के क्षेत्र में आगे आने को उचित माना और स्वयं लोगों के घर जाकर यह समझाने का प्रयत्न किया कि ईसाई विद्यालयों में पढ़ने से किसी की जाति भ्रष्ट नहीं होती और ना ही वह विधर्मी बन जाता है। वह लोगों से कहा करते थे-

> *"मैंने स्वयं कई बार बाइबिल पढ़ी है, कुरान शरीफ भी पढ़ी है, परन्तु न तो मैं ईसाई बना हूँ, न मुसलमान। अनेक यूरोपीय लोग गीता एवं रामायण का अध्ययन करते हैं किन्तु वह हिंदू नहीं बन गए"।*

उनका मानना था कि हमें उदारतापूर्वक संसार की बेहतर चीजों को आत्मसात करना चाहिए।

परिवर्तनशीलता एक प्राकृतिक नियम है। प्रभात के प्रथम पहर के साथ उदित सूर्य संध्या होते-होते अस्त हो जाता है और चाँद के प्रकाश में पूरी धरती शीतल चाँदनी में ढक जाती है। आप कल्पना करें क्या सूर्य का तेज स्थाई स्वरूप धारण कर पृथ्वी की गतिशीलता को बनाएँ रख सकेगा। नहीं! हमें इस बात को खुले मन से स्वीकार करना होगा कि सामाजिक नीति-नियम तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप गठित होते हैं। आगे चलकर परिवर्तित सामाजिक संरचना में, इसमें हेर-फेर करने, उसमें संशोधन करने में हिचक कैसी? किसी भी सामाजिक व्यवस्था का तेज समय बीतने के साथ नवीन परिस्थितियों में उग्र हो यदि झुलसाता प्रतीत हो तो उनमें आवश्यक परिवर्तन जरूर किये जाने चाहिए। राममोहन राय देश की शिक्षा व्यवस्था में इसी उदारता का समावेश चाहते थे। ज्ञान-विज्ञान के विस्तार व पुनर्जागरण से जिन सकारात्मक पक्षों का उद्‌भव हुआ है वह उनका समावेश भारत की शिक्षा व्यवस्था में करना उचित मानते थे। वह चाहते थे कि देश में प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क तथा अनिवार्य हो। चूँकि देश का एक बड़ा वर्ग निर्धन तथा अशिक्षित है जो अपने बालकों की शिक्षा का शुल्क दें सकने में असमर्थ है। निरक्षर अभिभावकों का शिक्षा की महत्ता से अनभिज्ञ होना, उनके बालकों के लिए अभिशाप है। अत: देश की प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क तथा अनिवार्य बनाकर देश के जन-जन तक शिक्षा का प्रचार-प्रसार सम्भव है।

लोकतंत्रीय सिद्धांतों को सामने रखते हुए जनसाधारण के लिए एँग्लो हिंदू विद्यालय में उन्होंने नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की थी। उनके पुत्र रामप्रसाद राय ने इसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा के क्षेत्र में वंश, जाति, धर्म व समुदाय के आधार पर किये जाने वाले किसी भी भेदभाव को उन्होंने उचित नहीं माना था।

वे नारी शिक्षा के भी समर्थक थे। उन्होने भारतीय समाज मे स्त्रियों के प्रति व्याप्त अनेक कुरीतियों का विरोध किया था। उनके प्रयास से भारत में सती प्रथा का अन्त हो सका। वह जानते थे कि पुरातन व्यवस्थाओं को बदल कर नयी व्यवस्थाएँ लागू करने के क्रम में नवीन उपलब्धताएँ भी समयोजित करनी होंगी। स्त्रियों को विभिन्न कुरीतियों से पृथक करने के लिए उन्हें किसी अन्य सशक्त आश्रय की आवश्यकता तो थी ही। पुरातन व्यवस्था के तहत पुरुषों पर आश्रित नारी उसके बगैर जिस ताकत से खड़ी रह सकेगी उसके लिए राममोहन राय ने शिक्षा का सहारा लिया। लम्बी अवधि तक शिक्षा के अधिकार से वंचित स्त्री वर्ग के लिए यह निर्णय बड़ा ही क्रांतिकारी था। राय के उदारवादी मन ने प्रखर हो बड़ी दृढ़ता के साथ भारतीय महिलाओं के लिए बंजर भूमि में ऐसे बीज बो दिये थे जिसके वृक्ष फल-फूलकर आज हमारे सामने हैं। भारत देश उनकी इस दूरदृष्टि व आधुनिक सोच के लिए कृतज्ञ है।

अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रति उनके लगाव, विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान को स्वीकृत किये जाने के प्रति उनकी दृढ़ता के सकारात्मक परिणाम भी आज हमारे सामने हैं। आज भारत देश सम्पूर्ण विश्व के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकने में समर्थ है नि:सन्देह यह उनकी वर्तमान उदारवादी शिक्षा नीति का परिणाम है। हम देखते हैं, विश्व के वह देश जो परम्परावादिता को सर्वोपरि मानकर उसके आवरण को अपने आगे से हटाने में हिचकते रहे हैं, वह विकास की दौड़ में पीछे, बहुत पीछे हैं। भारतीय संस्कृति के पुजारी तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक राममोहन राय ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भारतीय भाषा, साहित्य और दर्शन की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया और दूसरी तरफ भौतिक उन्नति के लिए पाश्चात्य अँग्रेज़ी भाषा, अँग्रेज़ी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया। हमारी आज की शिक्षा व्यवस्था इसी मजबूत आधार पर खड़ी है जिसके सकारात्मक परिणाम हमें प्राप्त हो रहे हैं।

विश्व नागरिकता के प्रतिपादक और भ्रातत्व व स्वतंत्रता के समर्थक राय ने शिक्षा द्वारा इन मूल्यों, के विकास को उचित कहा था।

वह पश्चिम की आधुनिक सभ्यता का बीजारोपण भारत में किये जाने के पक्ष में थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भारत में वास्तविक तथा उपयोगी ज्ञान, विशेषकर विज्ञान तथा उद्योग में विज्ञान के प्रयोग पर आधारित सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की स्थापना में सहायता दी।

शिक्षा का माध्यम

भारत में अँग्रेज़ी शासन व्यवस्था के बीच अँग्रेज सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे प्रयासों में 'शिक्षा का माध्यम' एक प्रधान मुद्दा था। भाषा, जो कि शिक्षा का आधार है जिसके द्वारा शिक्षा का प्रारम्भ होता है उसके लिए किसी प्रकार की दुविधा उचित ना थी। तत्कालीन परिस्थितियों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को देखते हुए राममोहन राय ने शिक्षा के माध्यम के लिए बड़ा ही उदारवादी दृष्टिकोण स्वीकृत किया। वह देश में वेदान्त की महत्ता को ज्यों का त्यों बनाएँ रखना चाहते थे, साथ ही देशवासियों को अँग्रेज़ी के द्वारा पाश्चात्य विद्याओं मे पारंगत करना

चाहते थे यही कारण है कि वह देश की जनता में संस्कृत, अरबी, फारसी के प्रचार-प्रसार से ही संतुष्ट नहीं हुए वह इन सबके साथ अँग्रेज़ी भाषा के भी प्रबल समर्थक रहे।

11 दिसम्बर 1823 को उन्होनें शिक्षा के संबंध में लार्ड एमहर्स्ट को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंनें अपनी मंशा स्पष्ट की—

> *"यदि ब्रिटिश राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान में वंचित रखने का इरादा रहा होता तो यूरोप के मध्ययुगीन धर्मशात्रियों की शिक्षा पद्धति के स्थान पर बेकन के दर्शन को प्रतिष्ठित न किया जाता क्योंकि मध्ययुगीन पद्धति, अज्ञान को चिरस्थाई रूप से कायम रखने का सर्वोत्तम साधन थी। इसी प्रकार यदि ब्रिटिश पार्लियामेंट की नीति भारत को अज्ञान के अंधकार में डाले रखने की हो तो उसके लिए संस्कृत शिक्षा प्रणाली सबसे अच्छी प्रणाली सिद्ध होगी। किन्तु सरकार का उद्देश्य देशी जनता की उन्नति करना है। इसलिए वह अधिक प्रबुद्ध तथा उदार शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहन देगी और गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन शास्त्र, शरीर रचना शास्त्र तथा अन्य लाभदायक विज्ञानों के पढ़ने की व्यवस्था करेगी।"*[5]

यद्यपि अँग्रेजों के प्रति उनकी यह आशावादिता बहुत उचित न थी। इतिहास ने यह सिद्ध किया है कि अँग्रेजों ने भारत में जो नीतियाँ लागू की उनका उद्देश्य ब्रिटिश शासन को सुचारू रूप से चलाना ही था। अँग्रेजों ने शिक्षा के प्रसार में जो योग दिया, वह भी उनकी प्रशासनिक आवश्यताओं की पूर्ति के लिए ही था। उन्होंने जो उद्योग लगाए या उद्योगों के विस्तार के लिए परिवहन और संचार था जो तंत्र स्थापित किया, वह सब यहाँ के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के दोहन के उद्देश्य से किया गया था। हाँ राममोहन राय की दूरदृष्टि इस सबके पीछे भारतीय जनता को अप्रत्यक्ष रूप से मिल सकने वाले लाभ को देख सकी थी। यही कारण है कि वह इन स्वार्थपूर्ण नीतियों का समर्थन करते रहे थे।

भाषा संबंधी उनके विचारों को विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि एक सबल विश्व स्वतरीय भाषा से भारतीय जनता को दूर रखना भी उन परिस्थितयों में बहुत उचित न था। यहीं राय ने मध्य मार्ग का अनुसरण करते हुए अँग्रेज़ी भाषा का समर्थन किया। उनका अन्तर्मन यह भलीभाँति जानता था कि भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से उदित भारत की अपनी भाषाओं की जड़े इतनी कमजोर नहीं हैं कि वे अपनी टहनियों पर किसी एक अन्य भाषा का बोझ ना उठा सकें। हम देखते हैं कि उनके इस समर्थन के सकारात्मक परिणाम ही हमें प्राप्त हुए है। भारत की अपनी सभी भाषाएँ, अपनी-अपनी जगह पर मजबूती से खड़ी है। उनका अस्तित्व उनकी महत्ता, उनके सम्प्रेषण का प्रभाव ज्यों का त्यों है। हाँ, अँग्रेज़ी भाषा ने इन सबके बीच अपनी छोटी-सी जगह अवश्य बना ली है और भारत की धरती पर एक ऐसा वर्ग मौजूद है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय अन्तर्मन को अँग्रेजी भाषा में खोलकर रख देने की ताकत रखता है।

[5] *दि इंग्लिश वर्क्स ऑफ राजा राममोहन राय*, जिल्द III, उद्धधृत-वर्मा वी. पी., *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक*, पूर्व संदर्भित, पृ. 23.

ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा के विषय में राय के विचार किसी द्वेष, किसी हीनता से प्रेरित न थे। ये विचार उनकी दूरदर्शिता के प्रतीक थे। भारत के अनेक विद्वानों ने अँग्रेज़ी भाषा के ज्ञान द्वारा भारतीय दर्शन, उसके ऐतिहासिक ग्रंथों में छिपे गूढ़ रहस्यों को यूरोपीय समाज तक उनकी भाषा में पहुँचाकर भारत देश का मान ही बढ़ाया है। विवेकानंद की दिव्यवाणी शिकागो सम्मेलन में जो प्रभाव उत्पन्न कर सकी थी उसमें उनकी अँग्रेज़ी भाषा पर पकड़ की अपनी महत्ता थी। वह भारतीय अन्तर्मन को यूरोपीय जनता के बीच उनकी भाषा को खोल कर रख सके थे। ऐसे तमाम उदाहरण मौजूद हैं। भाषा संबंधी अपने विचारों के कारण तत्कालीन परिस्थितियों में राय कटु आलोचना का शिकार हुए थे। वास्तव में उस समय अँग्रेज़ी सरकार भारत में अपनी जड़े मजबूत करने के लिए तमाम ऐसे नीति-नियम भारतीयों पर लागू कर रही थी जिससे भारतीय जनमानस बड़ा आहत था। अत: देश के एक बड़े वर्ग में अँग्रेज़ व अँग्रेज़ियत के प्रति रोष था। यह वर्ग देश की धुंध भरी सामाजिक व्यवस्था के बीच भारतीयता के प्रश्न पर अधिक गम्भीर था और एक-एक कर उन्हें सहेजने समेटने में लगा था।

राय के शिक्षा के माध्यम संबंधी विचारों का हम यदि सूक्ष्म विश्लेषण करें तो देखेंगे कि इस महान आत्मा ने अपनी वाणी से अग्नि प्रज्जवलित कर देश में दूधिया प्रकाश फैलाने का ही कार्य किया था। हमारी अपनी भाषाएँ ज्यों-की-त्यों देश में मौजूद थी देश से किसी भाषा के अस्तित्व को समाप्त करना आसान कार्य न था। सम्प्रेषण के माध्यम को औपचारिकता में बाँधना आसान नहीं है वह अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होगी ही। अब यदि समय की आवश्यकता के कारण किसी अन्य को भी अपने आसपास जगह देनी हो तो यह भाषा की समृद्धता का एक हिस्सा है। राय की दूरदृष्टि इस बात को देख सकी थी कि अँग्रेज़ी भाषा बड़ी तेजी से पूरे विश्व में अपनी पहचान बना रही है और आने वाले समय में अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर की कार्यविधियों का सबल माध्यम यही भाषा रहेगी। दिनकर ने राममोहन राय के इस मत के मध्य निहित मूल तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है—

> *जब अँग्रेज़ी शासक इस दुविधा में पड़े हुए थे कि भारतीयों की शिक्षा अँग्रेज़ी में हो या संस्कृत और फारसी के द्वारा, तब राममोहन राय ने अँग्रेज़ी का पक्ष लिया। अदूरदर्शिता उनकी यह रही कि उन्होंने इस बात पर विचार ही नहीं किया कि शिक्षा का माध्यम हिंदी और बँगला जैसी आधुनिक भाषाएँ भी हो सकती थीं"।*

जिन दिनों बँगाल में यह द्वन्द्व छिड़ा हुआ था कि शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी हो अथवा संस्कृत और फारसी, उन दिनों बम्बई में एलफिस्टन और पश्चिमोत्तर प्रदेश में थॉमसन यह मानकर चल रहे थे कि भारतीय जनता की शिक्षा उसकी प्रचलित भाषाओं में ही होनी चाहिए, अँग्रेज़ी, संस्कृत, अरबी और फारसी में नहीं। किन्तु राजधानी उस समय कलकत्ता में थी। अतएव राजधानी में उठने वाला विवाद ही सारे देश का विवाद हो गया और निर्णय केवल अँग्रेज़ी और भारत की क्लासिक भाषाओं के

बीच सीमित कर दिया गया। ऐसी स्थिति में राममोहन राय केवल अँग्रेज़ी का ही पक्ष ले सकते थे और उसी का पक्ष उन्होंने लिया भी।[6]

हम देखते है राय द्वारा अँग्रेजी भाषा के समर्थन ने भारतीय समाज का हित ही किया है अहित नहीं।

कुल मिलाकर यह स्पष्ट होता है कि राममोहन की सोच व दृष्टिकोण आधुनिक थी। वास्तव में वह पुनर्जागृत आत्मा के प्रतीक थे। जब से भारत में विदेशी विजेता आए तभी से यहाँ सांस्कृतिक समन्वय की समस्या थी। ब्रिटिश शासन की स्थापना ने इस सांस्कृतिक संघर्ष को और उग्र कर दिया था। राममोहन राय ने अपने युग के गूढ़ नैतिक ओर आध्यात्मिक तत्वों को भलीभाँति समझा और पूर्वी भारत में व्याप्त अज्ञान, अंधविश्वास और सामाजिक सांस्कृतिक पतन के विरुद्ध संघर्ष किया। एकेश्वरवाद तथा समाज सुधार में समन्वय स्थापित कर उन्होनें देश के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। देश को आधुनिक दिशा देने के क्रम में परम्परागत तथा नवीनता का जो समन्वय वह चाहते थे उसके लिए शिक्षा को एक माध्यम के रूप में चुनने में उनमें कोई हिचक नहीं थी। उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार व वैज्ञानिक ज्ञान को स्वीकृत किये जाने पर बड़ा जोर दिया था। वह स्वयं इस संदर्भ में जीवन भर प्रयत्नशील रहे। शिक्षा का विस्तार भी वह समाज के निम्न वर्गों में करना चाहते थे। परंपरावादी ब्राह्मणपरक व संस्कृतनिष्ठ शिक्षा के स्थान पर उन्होनें पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया था।

यद्यपि अँग्रेजों के प्रति उनकी यह अति आशावादिता उचित न थी। इतिहास इस बात का गवाह है कि अँग्रेज़ी प्रशासन के समस्त नीति-नियम उनके स्वयं के लाभ से प्रेरित थे। भारत में शिक्षा संबंधी उनकी व्यवस्थाओं में भी उनका स्वयं का स्वार्थ था। उन्हें अपना राज-काज यहाँ ठीक तरह से चलाने के लिए अँग्रेज़ी भाषा को समझने वाले कुछ व्यक्तियों की जरूरत थी। वह अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार द्वारा अपनी इस जरूरत को पूरा करना चाहते थे। हाँ राय अपनी दूरदृष्टि से इन सबसे पीछे भारतीय जनता को मिल सकने वाले अप्रत्यक्ष लाभ को देख सके थे। यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि राय के समाज सुधार कार्यों व विचारों के स्वतंत्रता संग्राम पर पड़ने वाले प्रभावों के लिए इतिहासकार एकमत नहीं हैं। डॉ. वर्मा उल्लेख करते हैं—

> *"राजा राममोहन राय ने बौद्धिक तथा सामाजिक मुक्ति के जिन आदर्शों को प्रतिपादित किया और लोकप्रिय बनाया उनके महत्त्व को हम स्वीकार करते हैं किन्तु हम राय के उन उत्साही प्रशंसकों से सहमत नहीं है जो उन्हें राजनीतिक स्वाधीनता का संदेशवाहक मानते है"।*[7]

शिक्षा संबंधी उनके विचारों में हमें उनकी इसी धारा की अवहेलना के कारण आज असहज स्थितियाँ भी देखने को मिलती हैं। विश्व बंधुत्व के उपासक राममोहन राय ने अपने उदारवादी दृष्टिकोण का जो विस्तार मनुष्य को दिया वही

[6]दिनकर, रामधारी सिंह (2000)-*संस्कृति के चार अध्याय,* पूर्व संदर्भित पृ. 458

[7]वर्मा, वी. पी. (2002) *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन*, पूर्व संदर्भित पृ. 18.

विस्तार व संभावनाओं की असीमितता उन्होंने भारतीय जनता के लिए भी स्वीकार की। राय के शिक्षा संबंधी विचारों को भलीभाँति समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों पर भी नजर डालनी होगी हम देखते हैं कि अँग्रेजी शासन काल के बीच की हमारी व्यवस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल से भरी हुयी थीं। गरीबी व अशिक्षा में घिरी भारत की जनता ढेरों सामाजिक कुरीतियों की शिकार थी। धर्म के नाम पर अंधविश्वास से घिरी जनता को इन विषम परिस्थितियों से बाहर निकालने का कोई और मार्ग था क्या? यदि हष्ट-पुष्ट व्यक्ति किन्हीं कारणों से उन्मत्त हो अपनी बलशाली भुजाओं से अपनी ही गर्दन पकड़ बैठे और उस पकड़ से दम घुटने को हो तो क्या करना होगा? हमें करना यह होगा कि किसी दूसरे के हाथ का आश्रय लेकर उस पकड़ को छुड़ाएँ और उसे खुली हवा में साँस लेने का मौका दे। राजा राममोहन राय ने भी यही किया। धार्मिक अंधविश्वासों व रूढ़ियों की जिस जकड़ से भारत देश का दम घुटने को था उसे शुद्ध वायु प्रदान करने हेतु उन्होंने अँग्रेज़ी शिक्षा का आश्रय लिए जाने का समर्थन किया। हमें ध्यान रखना होगा, आगे की ऊर्जा वे अपनी पहचान बनाए रखने में व्यय करना चाहते हैं। भारतीयता के आत्मसम्मान के साथ कोई भी समझौता करते वे नहीं दिखे, बल्कि ब्रह्म समाज के रूप में उन्होंने एक ऐसी संस्था हमें दी जिसका कार्य भारतीय संस्कृति व सभ्यता को सहेज रखना भी था। उनके समाज सुधार संबंधी कार्यों व आधुनिक शिक्षा के समर्थन के लिए सम्पूर्ण भारत देश सदैव ऋणी रहेगा।